ISSN No. : 2394-0344 REMARKING : VOL-1 * ISSUE-7*December-2014

भारत में मावन अधिकारों का सैद्धान्तिक स्वरूप

गुणवन्ती
व्याख्याता,
सामाजिक विज्ञान विभाग,
ग्रीनवुड कॉलेज ऑफ एजुकेशन,
मेरठ हाईवे रोड,
रॉवर करनाल हरियाणा

सारांश

वर्तमान युग प्रजातन्त्र का युग है संसार के सभी सभ्य और विकासशील देश जनता को अधिक अधिकार दिये जाने के पक्ष में है। व्यक्ति के अपने व्यक्तिव के विकास के लिए अधिकारों की प्राप्ति बहुत आवश्यक है। राज्य की उत्पति भी जनता की भलाई के लिये हुई है। अतः सर्वसाधारण को अपने व्यक्तिव के चहुमुखी विकास के लिये अनेक अधिकारों की आवश्यकता होती है। अनुकूल वातावरण की प्राप्ति के लिये मनुष्य कुछ ऐसी माँग समाज से करता है जो समाज द्वारा स्वीकृत होने पर अधिकार का रूप ले लेती है।

मुख्य शब्दः प्रजातन्त्र, विकासशील देश, फ्रांस की राज्य क्रान्ति, मानव अधिकार, भारतीय संविधान, सामाजिक आर्थिक व राजनैतिक न्याय,विश्वास, धर्म, उपासना, अस्पृश्यता का अन्त, दवियोका अन्त, वृति उपजीविका या व्यापार की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध,जीवन तथा दैहिक स्वतन्त्रता, अनुच्छेद 12–35, नीतिनिर्देशक, कार्बनिक इकाई

प्रस्तावना

आधुनिक युग में प्रायः समस्त लिखित संविधानों में मौलिक अधिकारों का उल्लेख देखने को मिलता है। सर्वप्रथम फ्रांस की राज्य क्रान्ति के समय राष्ट्रीय सभा ने मानव के अधिकारों की घोषणा संविधान में नागरिकों के कतिपय मौलिक अधिकारों का उल्लेख किया। अमेरिका ने भी अपने संविधान में मौलिक अधिकारों का समावेश करके एक उदाहरण पेश किया। वास्तव में आजकल मानवअधिकार विशेष चर्चा का विषय बन गया है।

भारतीय संविधान व मानव अधिकार

भारत ने 15 अगस्त 1947 को स्वतंन्त्रता प्राप्त की। डॉ. अम्बेडकर की अध्यक्षता में भारतीय संविधान का निर्माण हुआ। भारतीय संविधान का मुख्य उद्देश्य सभी भारतवासियों के मानव अधिकारों को सुरक्षित बनाना है।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना मानव अधिकारों की गारन्टी देता है। प्रस्तावना में प्रयुक्त किये गये शब्द मानव अधिकार और उनकी सुरक्षा व महत्व को दर्शाते है।

सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्राप्त करने के लिये तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा करने वाली बंधुता बढाने के लिये यहॉ ध्यान देने वाली बात है कि प्रस्तावना में प्रथम स्थान 'न्याय', 'स्वतंत्रता', 'समानता'को दिया गया है, जहाँ न्याय की व्याख्या की है वहाँ सामाजिक न्याय को राजनैतिक न्याय के समक्ष प्राथमिकता दी है। मत लेने व देने के अधिकार अर्थहीन है यदि जनता को सामाजिक न्याय की गारन्टी नही दी जाती है। मानव अधिकार को समझते हुए हमारे संविधान निर्माताओं ने भारतीय संविधान में नागरिको के मौलिक अधिकारों का वर्णन किया है।

भारतीय संविधान व मौलिक अधिकार

संविधान का भाग – 3 मौलिक अधिकारों की व्याख्या करता है। सविधान सभा ने जब संविधान का निर्माण आरम्भ किया, तब तक इतिहास ने संविधान के लिये अधिकारों को एक कोश तैयार कर दिया था जिसमें 1925 की कामनवेल्थ ऑफ इण्डियां बिल की 'अधिकारों की घोषणा' 1928 की मोतीलाल कमेटी फार इण्डियन राइटस जो कि 1950 के संवैधानिक मौलिक अधिकारों के बहुत ही करीब थी, 1930 की लाहौर कॉग्रेस द्वारा नेहरू जी की अध्यक्षता में पूर्ण स्वतन्त्रता की मांग, 1931 का सुविख्यात 'मौलिक अधिकारों का सामाजिक परिवर्तन' का करॉची सकंल्प, सप्रूकमेटी द्वारा तैयार मौलिक अधिकार संहिता आदि सम्मिलित थे। मानव अधिकारों की घोषणा के एक वर्ष बाद ही संविधान सभा ने इन अधिकारों के तत्व को ग्रहण कर लिया है। मौलिक अधिकार व नीति–निर्देशक सिद्धान्त भारतीय सविधान के दो ऐसे भाग है, जो मानव अधिकार घोषणा के अधिकांश क्षेत्र को सम्मिलित करते है। नेहरू जी के अनुसार सभा का प्रथम उद्देश्य संविधान द्वारा स्वंतन्त्रता प्रदान कराना, भूखे लोगों को भोजन देना, निर्वस्त्र लोगो को कपड़ा देना व क्षमता के अनुसार पूर्ण

रूप से विकसित होने का अवसर देना। मौलिक अधिकार भाग 3 नीति निर्देशक तत्व भाग 4 एवं बाद में जोड़े गये मौलिक कर्त्वय एक कार्बनिक इकाई का निर्माण करती है, जिसका प्रवाह प्रस्तावना से हो रहा है।

मौलिक अधिकारों का वर्गीकरण

संविधान के तीसरे भाग, अनुच्छेद 12 से 35 में, मूल अधिकारों की लम्बी तथा अर्थपूर्ण सूची का वर्णन किया है, जो विश्व के प्रायः सभी संविधान के मूल अधिकार सम्बन्धी भाग से अधिक विस्तृत है। भारतीय जनता की धार्मिक,सांस्कृतिक तथा सामाजिक विविधताएँ ही इस भाग की विशालता के कारण बताये जाते है। इन मूल अधिकारों को सात भागो में विभाजित कर सकते है।

समानता का अधिकार

प्रजातन्त्र का आधारभूत सिद्धान्त समानता है। भारतीय संविधान के निर्माताओं ने भारत में जनतन्त्रात्मक शासन की व्यवस्था की है। अतः समानता के अधिकार को भारतीय राजनीतिक भवन का स्तम्भ बन गया है।समानता के अधिकार द्वारा सभी व्यक्तियों को वैधानिक,नागरिक और सामाजिक समानता प्रदान की गई है। धर्म, जाति, वर्ण, जन्म, नस्ल, कुल, लिंग, इत्यादि के आधार पर राज्य किसी भी नागरिक के साथ भेदभाव नहीं कर सकता।संविधान की 14वीं से 18वीं धाराओं तक समानता के अधिकारों का वर्णन है,जिसके अन्तर्गत निम्नलिखित पाँच प्रकार के अधिकार आते है।

कानून के समक्ष समानता

कानून के समक्ष समता का अर्थ यह है कि राज्य का कानून सभी व्यक्ति पर समान्न रूप से लागू है। भारतीय संविधान में धारा 14 के अनुसार, कानून के समक्ष सभी नागरिक समान है और सबको कानून का समान संरक्षण प्राप्त है।

सामाजिक समानता

भारतीय संविधान की 15वीं धारा के द्वारा सामाजिक समता प्रदान की गई है और कही गया है कि राज्य किसी नागरिक के विरूद्ध केवल धर्म, कुल, वंश, जाति आदि के आधार पर विभेद नहीं करेगा। दुकान, होटल, भोजनालय, मनोंरजन आदि के स्थान पर निशिद्ध नहीं हो सकता और न उपरोक्त नागरिक को कुओं, सड़को, समागम आदि के स्थानों का जिन्हें राज्य से सहायता मिलती है उपयोग करने में भेद–भाव नहीं किया जा सकता।

सेवा प्राप्ति के अवसर की समता

राज्याधीन सेवाओं के सम्बन्ध में प्रत्येक नागरिक को नियुक्ति का समान अवसर प्राप्त है। संविधान की 16वीं धारा के अनुसार सभी नागरिकों को राज्य के अन्तर्गत सभी नौकरियों तथा पदों की प्राप्ति का समान अवसर दिया गया है यह स्पष्ट कर दिया गया है कि केवल धर्म, कुल, वंश, जाति के आधार पर अथवा इनमें से किसी एक के आधार पर राज्य विभेद नहीं करेगा और न उपरोक्त आधार पर किसी व्यक्ति को राज्य के अन्तर्गत किसी पद के लिए आयोग्य नहीं ठहराया जा सकता है। लेकिन इन सम्बन्ध में एक अपवाद है कि राज्य को यह अधिकार दिया गया है कि वह पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए सरकारी पदो के कुछ स्थान सुरक्षित रखें।

अस्पृश्यता का अन्त

अस्पृश्यता की प्रथा सदियों से भारतीय समाज पर एक कलंक है, जो जाति का विकृत रूप है। संविधान की 17वीं धारा के अनुसार अस्पृश्यता का अन्त कर दिया गया है और स्पश्ट शब्दों में यह घोषणा कर दी गई है कि किसी भी रूप में अस्पृश्यता का आचरण दण्डनीय है। इस प्रकार छुआछूत से ऊपजी किसी प्रकार की आयोग्यता को लागू करना अपराध है । संविधान के इसी उपबन्ध के आधार पर भारतीय संसद ने सन **1955** में अस्पृश्यता अपराध सम्बन्धी अधिनियम पारित किया।इसके अनुसार अस्पृश्यता के आचरण करने वालों को छः महीने तक के कारावास को सजा दी जा सकती है। लेकिन, केवल कानून के द्वारा सामाजिक जीवन की इस विकट समस्या का समाधान नहीं हो सकता। इसके लिए सर्वसाधारण के मनोभाव का अधिकार आवश्यक है।

पदवियों का अन्त

समता अधिकार के अन्तर्गत पदवियों का भी अन्त है, जो सामाजिक समानता स्थापित करने के उद्देष्य से किया गया है।संविधान की 18वीं धारा के अनुसार राज्य की और से सैनिक उपधियों को छोड़कर अन्य सभी उपाधियॉ हटा दी गई है। यदि कोई व्यकित भारत सरकार की सेवा में है, तो वह राष्ट्रपति की स्वीकृति लेकर विदेशी सरकार की उपाधि ग्रहण कर सकता है। उपाधियों का अन्त इसलिये किया गया है कि सरकारी पदवियों द्वारा समाज में वर्ग भेद पैदा न किया जाये।

समता के अधिकार की आलोचना

समता के अधिकार सम्बन्धी उपबन्दों द्वारा भारतीय तनता को राजनितीक, सामाजिक एवं न्यायिक क्षमता प्रदान कि गई है।परन्तु क्षमता के अधिकार का स्तम्भ आर्थिक क्षमता है। भारतीय संविधान में आर्थिक क्षमता के अधिकार की और संकेत नहीं किया गया है। इसलिये विद्धानों का कहना है कि क्षमता का अधिकार यदि निर्जीव नहीं तो अपूर्ण अवश्य है। भारतीय संविधान के विधायकों की आर्थिक समता के प्रति उदासीनता के सम्बन्ध में डॉ.जेनिग्सं हास्यपूर्ण शब्दों में लिखा है कि ऐसा प्रतित होता है कि यदि सरजोन ब्राउन या जरनल ब्राउन बन जाते है। या वे स्वर्णजनित मोटर पर घूमते या वे अपनी स्त्री को जवाहरात और सिल्क की साड़ियों से लाद देते है, तो समता के अधिकार का खडन नही होता, परन्तु यदि उनके जैसा, सरआवर जेनिंसद्ध कोई वक्ता प्राध्यापक की निःशुल्क उपाधि प्राप्त कर लेता है तो समता के अधिकार का खण्डन होता है।

स्वतन्त्रता का अधिकार

संयुक्त राज्य अमेरिका की स्वतन्त्र उद्घोषणा के रचियता थामस जयफर्सन का कहना था कि जीवन स्वाधीनता और सुख की खोज मनुष्य के अविच्छेद अधिकार है। वस्तुतः व्यक्ति स्वतन्त्रता जनतन्त्रामक शासन का आधार है। व्यक्तिक स्वतन्त्रता के आधार के अधिकार ऐसे सात्विक आधार है जिनके बिना नागरिको को जीवन में सुख प्राप्ति नही हो सकती हमारे संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है कि संविधान का उद्देश्य स्वाधीनता विचाराभिव्यक्ति विश्वास धर्म और उपासना की स्वाधीनता सुनिश्चित करना है। इस मूर्त रूप देने हेतु संविधान के विधायकों ने 19 से 22 तक की धाराओं तथा नागरिकों को अनेक प्रकार की स्वतन्त्रताऍ प्रदान की गई है। इस धारा द्वारा नागरिकों को सात स्वतन्त्रताऍ प्रदान कि गई है।

1. भाषण और विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतनत्रा। शान्तिपूर्वक और बिना हथियार के एकत्रित होने की स्वतन्त्रता।
2. संगठन या संघ बनाने की स्वतन्त्रता।
3. भारत राज्यक्षेत्र में सर्वत्र आबाध आने–जाने की स्वतन्त्रता। भारत के किसी भाग में निवास करने तथा बसने की स्वतन्त्रता।
4. सम्पत्ति के अर्जन, धारण एवं व्यय करने की स्वतन्त्रता।
5. कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने की स्वतन्त्रता।

इस प्रकार संविधान द्वारा भारतीय नागरिको को वे सभी व्यैक्तिक स्वतन्त्रताएँ प्रदान की गई है जो उनके व्यक्तिव के लिये आवश्यक है। संविधान के प्रवर्तन के समय से भारतीय नागरिको ने स्वतन्त्रता के अधिकारों का उपभोग किया है।

स्वतन्त्रता के अधिकार पर प्रतिबन्ध

कोई भी अधिकार अमर्यादित नहीं हो सकता विशेषतः स्वतन्त्रता के अधिकार तो असीमित हो ही नहीं सकते क्योंकि राज्य की सुरक्षा सार्वजनिक हित आदि के लिये उन पर प्रतिबन्ध लगाना आवश्यक है ।

संविधान सभा द्वारा जो उपबधं मूल रूप से पास हुआ था। उसके भाषण तथा अभिव्यक्ति स्वतन्त्रता पर कम प्रतिबन्ध थे। वह उपबधं इस प्रकार था। भाषण अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का अधिकार राज्य को कोई ऐसा कानून बनाने से नहीं रोक सकता जो अपमानलेख, अपमानवचन, मानहानि आदि से सम्बन्ध हों राज्य की सुरक्षा को दुर्बल करती हो या राज्य को उलटने की प्रवृति रखती हों । लेकिन रमेश थापड बनाम मद्रास राज्य नामक मुकदमें में निर्णय देते हुए उच्चतम न्यायालय ने इस उपबन्ध व्याख्या करते हुए बताया कि भाशण तथा अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता से सार्वजनिक सुरक्षा खतरे में हो लेकिन राज्य की सुरक्षा दुर्बल न हो तो राज्य उस अधिकार को सीमाबद्ध नही कर सकता ।सन 1951 में पटना के उच्च न्यायालय ने उपरोक्त व्याख्या के आधार पर भारतीय प्रेस सम्बन्धी मुकदमें में बताया कि यदि भाषण की स्वतन्त्रता द्वारा अपराध या हत्या को प्रोत्साहित किया जाये, परन्तु राज्य की सुरक्षा दुर्बल न हो राज्य उसे सीमाबद्ध नहीं कर सकता। इन निर्णयों से स्पश्ट होगा की भाषण कि स्वतन्त्रता पर अपराध रूप हत्या को प्रोत्साहित किया जाये परन्तु राज्य की सुरक्षा दुर्लब न हो राज्य उसे सीमाबद्ध नहीं कर सकता। अतः सन् 1951 मे संसद ने संशोधन द्वारा इस उपबन्ध में सार्वजनिक सुव्यवस्था और विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबन्ध शब्द जोड दिये और कहा गया कि सार्वजनिक सुव्यवस्था की हानि अपराधों के लिये उकसाने और विदेशों से मैत्रीपूर्ण सम्मान को आघत पहुँचाने वाले कार्यो के सम्बन्ध में संघ और उसके अन्तर्गत राज्यों की सरकारे युक्ति संगत प्रतिबन्ध लगा सकती है इससे भाषण की स्वतन्त्रता को सीमित करने का क्षेत्र व्यापक तथा विस्तृत हो गया क्योंकि हित में और विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध का क्षेत्र इतना व्यापक है कि सरकार की आन्तरिक तथा वैदेशिक नीति उसमें आ ही जाती है और सभी प्रकार के उन भाशणों और लेखों से जिनमें सरकार की नीति की आलोचना है सार्वजनिक सुरक्षा कुछ अंश में खतरे में पड़ती ही है। फिर भी 'युक्तिसंगत' शब्द के जोड़ देने से सरकार की प्रतिबन्ध लगाने की शक्ति बहुत कुछ सीमित हो जाती है, इस संम्बन्ध में स्मरण रहे कि सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फरवरी 1967 में दिये गये निर्णय के द्वारा संसद को सविधान में संशोधन करके भी मूल अधिकार को सीमित करने के अधिकार से वचिंत कर दिया है।

शान्तिपूर्ण और निरायुद्ध सम्मेलन की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध

संविधान की धारा 19 खण्ड (1) उपखण्ड ([k-) के अनुसार प्रत्येक नागरिक को बिना हथियारों के सभा का संगठन संघ बनाने का अधिकार प्राप्त है।लेकिन इस अधिकार पर भी सार्वजनिक के हित में तथा नैतिकता के हित में युक्तिसंगत प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार राज्य को प्राप्त है।'युक्तिसंगत प्रतिबन्ध' शब्द के प्रयुक्त होने के कारण राज्य की शक्ति सीमित हो जाती है, क्योंकि अन्तिम निर्णय न्यायालय ही करेगा की प्रतिबन्ध युक्तिसंगत है या नहीं।

वृति,उपजीविका या व्यापार की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध

धारा 19 के उपखण्ड (N) के अर्न्तगत सभी नागरिको को वृति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने की स्वतन्त्रता प्रदान की गयी है। लेकिन साधारण जनता के हित में राज्यों को कानून द्वारा उस स्वतन्त्रता पर 'युक्तिसंगत' प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार दिया गया है। इसी प्रकार सन 1950 में उच्चतम न्यायालय ने मध्य प्रदेश बीडी कानून की उन धाराओं को अवैध घोषित कर दिया जिसके द्वारा राज्य सरकार कुछ ग्रामों में बीडी बनाने पर प्रतिबन्ध लगा सकती थी और बताया की उक्त धाराओं द्वारा लोगो को जीविकोपार्जन पर अनुचित प्रतिबन्ध लगाने की व्यवस्था की गई थी।

अपराध के लिए दण्डित होने की सुरक्षा

उपर्युक्त 7 स्वतन्त्रताओं के बाद इस उपखण्ड में अपराध के लिए दण्डित होने के सम्बंध में तथा जीवन और दैहिक स्वतन्त्रता की रक्षा का भी प्रावधान किया गया है। संविधान कि धारा 20 के अनुसार कोई व्यक्ति अपराध सिद्ध होने पर ही दण्डित किया जा सकता है। एक अपराध के लिए वह एक बार से अधिक अभियोजित नहीं किया जा सकता और ना ही उसे अपने ही विरूद्ध गवाही देने के लिए विवश किया जा सकता है। यह धारा अत्यधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसके द्वारा यह व्यवस्था कि गई है कि राज्य कोई दण्डात्मक कानून बनाकर पूर्व के अपराधों पर लागू न करे और एक ही अपराध के लिए अभियुक्त को दो बार दण्ड नहीं दे।

जीवन तथा दैहिक स्वतन्त्रता की रक्षा

संविधान की धारा 21 द्वारा नागरिकों के जीवन तथा दैहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोडकरअन्य किसी प्रकार से वंचित नही किया जा सकता अर्थात किसी व्यक्ति की जीवन सम्बन्धी तथा दैहिक स्वतन्त्रता का अपहरण केवल कानून के बल पर ही किया जा सकता है। अर्थात, कार्यपालिका विधानमण्डल द्वारा बने कानून के आधार पर इस अधिकार का हनन कर सकती है यहॉ 'कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया' शब्द अत्यधिक उल्लेखनीय है,जो न्यायालय की शक्ति बहुत सीमित कर देते है। इन शब्दों के अनुसार न्यायालय केवल यह देख सकता है कि किसी व्यक्ति की इस स्वतन्त्रता का अपहरण विधानमण्डल द्वारा बने कानून की प्रक्रिया के अनुसार किया गया है या नहीं। उसे कानून के औचित्य पर विचार करने का अधिकार नहीं है। इस सम्बन्ध में ए. के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य नामक प्रसिद्ध मुकदमें में उच्चतम न्यायालय

के प्रधान न्यायाधीश द्वारा दी गयी व्याख्या उल्लेखनीय है। कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया शब्दों में संविधान ने विधानमण्डलों को कानून बनाने का अन्तिम अधिकार दे दिया है। इसके विपरीत, अमेरीका संविधान के अनुसाार वॅहा के न्यायालयों को कानून के औचित्य तथा प्रक्रिया की अनुकूलता दोनों पर विचार करने का अधिकार दिया गया है।

बन्दीकरण और निरोध के संरक्षण

स्वतन्त्रता के अधिकार के अन्तर्गत बन्दीकरण और निरोध के संरक्षण का भी प्रावधान है। संविधान के धार 22 में कहा गया है कि किसी बन्दी किये हुए व्यक्ति को बन्दीकरण के कारणों से अवगत कराये बिना हवालात में बन्द नहीं किया जा सकता। बन्दी को स्वेच्छापूर्वक वकील से परामर्श लेने और अपनी रक्षा के अधिकार है। लेकिन यह उपबन्ध शत्रुदेश के नागरिकों पर जो निवारक – निरोधक अधिनियम के अन्तर्गत बन्दी किये गये है, लागू नहीं है।

निवारक – निरोधक अधिनियम

संविधान में निवारक–निरोधक अधिनियम की भी व्यवस्था है। इस धारा के चतुर्थ खण्ड में कहा गया है कि किसी भी व्यक्ति का तीन महीने के लिए बिना मुकदमा चलाये नजरबन्द किया जा सकता है। लेकिन ऐसे बन्दियों को बन्दिकरण के कारणों से यथाशीघ्र अवगत होने तथा अभ्यावेदन करने के अधिकार दिये गए है फिर भी यदि जनहित के विरूद्ध कोई तथ्य हो तो अधिकारी बन्दिकरण के कारण नही भी प्रकट कर सकते है।

इंग्लैण्ड के संविधान में पार्लिमेन्ट को ऐसे कानून बनाने का अधिकार है जिनमें शान्तिकाल में भी निवारक विरोध किया जा सकता है केवल वही की पार्लियामेण्ट ने कभी भी ऐसा कानून नहीं बनाया। भारत में साधारण तथा असाधारण दोनों परिस्थितियों में विरोध किया जा सकता है।सन् 1950 में सर्वप्रथम निवारक – विरोध अधिनियम बना जिसके द्वारा इसकी अवधि एक वर्ष रखी गई।पुनः दो संशोधन अधिनियमों द्वारा इसकी अवधि बढ़ा दी गई और वह इस समय तक लागू है।इस संम्बन्ध में यह बात विचारणीय है कि तीन महीने तथा इससे कम अवधि के निरोध के लिए मन्त्रणा समिति आवश्यक नहीं है इस संम्बन्ध में बिहार के तेज नारायण झा के मुकदमें में उच्च्तम न्यायालय के न्यायाधीश श्री फजल हुसैन का कथन उल्लेखनीय है।

उन्होने कहा था कि गवाहों को बुलाकर हमें यह जानने का अधिकार नहीं है कि आप के विरूद्ध जो अभियोग लगाये गए है वे सही या झूठ यह आपके और सरकार के बीच की बात है यदि कानून सम्बन्धी कोई बात हों, यदि कानून का कोई अतिक्रमण हुआ हो तो हम आपकी प्रार्थना पर विचार कर सकते है किन्तु मुश्किल यह है कि सत्यता या असत्यता पर विचार करने का हमें अधिकार नहीं है।

शोषण के विरूद्ध अधिकार

संविधान की धार 23 और 24 में शोषण के विरूद्ध अधिकार उल्लेख है, जिसके द्वारा भारतीय समाज में एक मनुष्य द्वारा दूसरे के शोषण का अन्त कर दिया गया है। हमारे देश में सदियों से अनेक सामाजिक कुरीतिया फैली हुई थी, जैसे मद्रास में देवदासी प्रथा और राजस्थान में बॉंदी – प्रथा जिसके द्वारा एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का शोषण करता था। संविधान के निर्माताओं ने इस उपबन्ध के द्वारा इन सामाजिक कुरीतियों तथा प्रथाओं का अन्त करने का निर्णय किया है। बेगारी और अन्य जबर्दस्ती लिया हुआ श्रम निशिद्ध कर दिया गया है और इस प्रावधान के उल्लंघन को दण्डनीय बताया गया है। लेकिन राज्य को सार्वजनिक प्रयोजना के लिए अनिवार्य सेवा लेने का अधिकार है। फिर भी राज्य अनिवार्य सेवा लेने में धर्म, मूल–वंश, जाति आदि के आधार पर या इनमें से किसी एक के आधार पर नागरिकों के बीच विभेद नहीं करेगा। धारा 24 के अनुसार, 14 वर्ष से कम उम्र वाले बालकों को किसी कारखाने, खान या अन्य किसी प्रकार के स्थान पर नहीं लगाया जा सकता।

धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार

संविधान के अनुसार भारत में एक धर्म–निरपेक्ष राज्य की स्थापना की गयी हैं। भारत जैसे विशाल देश में विभिन्न धर्मो के लोग निवास करते है। संविधान के निर्माता सभी धर्म के लोगो को अन्तःकरण की स्वतन्त्रता तथा धार्मिक आचार –विचार के सम्बन्ध में समान अधिकार के पक्षपाती थे और चाहते थे कि धार्मिक बातों में राज्य तटस्थ रहे है। इसी कारण संविधान में धार्मिक मामलों में राज्य को पूर्णतः निरपेक्ष घोषित किया गया है। 25,26,27,28 धाराओं में धार्मिक –स्वतन्त्रता के अधिकार का उल्लेख है। धारा 25 के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को सार्वजनिक सुव्यवस्था तथा स्वास्थ्य के अधीन रहते हुए अन्तःकरण की स्वतन्त्रता, किसी भी धर्म को अबाद रूप से मानने, आचरण करने का प्रतिबन्धित कर सकता है।उसे सामाजिक कल्याण तथा सुधार के लिए सार्वजनिक हिन्दू संस्थाओं को कानून के द्वारा सभी वर्गो तथा विभागों के हिन्दूओं के लिए खोल सकने का भी अधिकार है। धारा 26 के अनुसार सभी धार्मिक सप्रदायों को सार्वजनिक सुव्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों के अधीन रहते हुए धार्मिक संस्था स्थापित करने और धर्म सम्बन्धी बातों के प्रबन्ध करने की स्वतन्त्रता है। धारा 27 में यह घोषणा की गई है कि राज्य किसी धर्म को अपनी ओर से प्रोत्साहित नहीं कर सकता और न धार्मिक प्रयोजन के लिए किसी व्यक्ति को कर देने के लिए बाध्य ही कर सकता है। धारा 28 के अनुसार, राज्य संचालित शिक्षालय में, जिसका पूरा खर्च राज्यनिधि से मिलता है, लेकिन व्यक्तिगत संस्थाओं में कोई बाधा नहीं, क्योंकि इस उपबन्ध में उसका उल्लेख नही है धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार –पत्र कहा गया है। इन अधिकारों द्वारा भारतीय जनता की धार्मिक भावनाओं का आदर किया गया है और उसे धार्मिक सहिष्णुता का सन्देश दिया है।

संस्कृति तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार

संविधान कि धारा 29 और 30 में संस्कृति तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार का वर्णन किया गया है। इन उपबन्धों के अन्तर्गत विभिन्न वर्ग के लोगों की संस्कृति की रक्षा का प्रावधान किया गया है, जो इस प्रकार है :

1. भारत के राज्य क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी वर्ग को जिसकी अपनी भाषा, लिपि या संस्कृति है, उन्हे बनाये रखने का अधिकार है।
2. राज्य द्वारा घोषित अथवा राज्य–निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षण –संस्था में प्रवेश प्राप्त करने से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, जाति, भाषा अथवा

इनमें से किसी एक आधार पर वंचित नही किया जा सकता।

3. धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक वर्ग को यह अधिकार है कि वे अपनी रूचि की शिक्षा– संस्थाओं की स्थापना करें और उनका प्रबन्ध करें।
4. राज्य की ओर से शिक्षण –संस्थाओं को सहायता देने में राज्य यह विभेद नही कर सकता कि कोई संस्था धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक वर्ग द्वारा संचालित है।

सम्पति का अधिकार

परम्परागत उदारवादी अवधारणा में संम्पति का अधिकार आर्थिक अधिकार के रूप में केवल उन्हीं के लिए अर्थपूर्ण है, जिसके पास सम्पति है। भूमिहीन करोड़ों लोगो के लिए इसका महत्व नगण्य है। भारत की पंरपरागत सामाजिक संरचना में स्थिति और संपति रखने कि प्रचलित प्रथा के कारण समाज में बड़े पैमाने के पर आर्थिक असमानता रही है। इस आमानता को संपति, विशेष रूप से भूमी पर उत्पादन के अन्य साधनों, का समान विवरण किये बिना कम करना असंभव था। संविधान निर्माता जीवन और स्वतन्त्रता के अधिकार की तरह ही नागरिको की संपति के अधिकार का संरक्षण करना चाहते थे और दूसरी तरफ, कॉग्रेस सामंतवादी संरचना में परिवर्तन करना चाहती थी। इन परिस्थितियों में, अनुच्छेद 19 (1) संपति अर्जित करने, संग्रह करने और खर्च करने के अधिकार की गारन्टी देता था। आम जनता के हित में इस पर कुछ प्रतिबंध भी लगाये जा सकते थे। अनुच्छेद 31 में व्यवस्था की गई थी कि सार्वजनिक उद्देश्य के लिए संपति का ग्रहण तभी किया जायेगा जब सरकार इसका अधिग्रहण करने के लिए क्षतिपूर्ति करेगी।

न्यायालयों ने अपने निर्णयों ने अनुच्छेद 14 द्वारा संरक्षित कानून के समक्ष समान्ता के सिद्धान्त के आधार पर जमीदारी उन्मूलन अधिनियमों को निरस्त कर दिया। सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी व्याख्या दी कि 'क्षतिपूर्ति' का अर्थ है ली जाने वाली संपति के बदले समान क्षतिपूर्ति देना। न्यायालयों ने संपति का अधिग्रहण करने और इसका क्षतिपूर्ति न देने के आधार पर मिलों के प्रबन्धन को अपने हाथ में लेने के लिए कानून को अवैध घोषित किया है। इन समस्याओं के समाधान के लिए सर्वप्रथम संविधान में चौथा और सातवां संशोधन किया गया।

सन् 1967 में गोलकनाथ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने संवैधानिक संसोधन और साधारण कानून के बीच के अन्तर को स्पष्ट करने की घोषणा कि और कहा कि भविष्य में संसद को संविधान के भाग – III में दिये गए उपबन्धों को हटाने का अधिकार नहीं होगा।

यदि संपति के अधिकार को पूर्णतया समाप्त कर दिया जाता है तो इससे व्यक्ति अपने श्रम का पारितोषिक प्राप्त करने से भी वांचित किया ता सकता है। विभिन्न प्रकार की संपति के बीच विभेद किये बिना मौलिक अधिकारों अधिकारों के उपबन्धों से संपति के अधिकार को हटा देना कोई ठोस उपाय नहीं है। इससे लोकप्रियता की गंध के सिवाय कुछ भी हासिल नहीं हुआ है।लेकिन यह विस्मय कि बात है कि इस महत्वपूर्ण निर्णय पर किसी भी प्रकार का कानूनी और संवैधानिक विवाद अभी तक सामने नहीं आया है।ऐसा प्रतीत होता है कि निहित स्वार्थी और धनी वर्ग को आशा है कि शक्ति के विभिन्न माध्यमों पर उनका भी बराबर अधिकार है।संक्षेप में मौलिक अधिकारों के उपबंधों से संपति के अधिकार को हटा देने से शायद ही किसी अर्थपूर्ण उद्देश्य की प्राप्ति हुई है।

संवैधानिक उपचारों का अधिकार

केवल संविधान में मूल अधिकार के उल्लेखन मात्र से ही नागरिको को मूल अधिकार नहीं होते।इसके लिए आवश्यक है कि मूल अधिकारों के प्रयोग करने तथा उनकी रक्षा करने का समुचित वैधानिक प्रावधान हो।भारतीय सविधान में मूल अधिकारों की रक्षा भी प्रावधान है जिसे सांवैधानिक उपचारों का अधिकार कहते हैं। धारा 32 के अनुसार, यदि राज्य या अन्य कोई व्यक्ति नागरिको के मूल अधिकारों का अपहरण करे, तो नागरिक उन अधिकारों की रक्षा के लिए उच्चतम न्यायालय की शरण ले सकता है। उच्चतम न्यायालय उन अधिकारों की रक्षा के लिए समुचित निर्देश तथा लेख जारी कर सकता है।इन लेखों के अन्तर्गत बन्दी –प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिशेध आदि हैं। संसद को यह भी अधिकार है वह किसी अन्य न्यायालयों को इस प्रकार के लेख जारी करने का आदेश दे। वस्तुत संविधान की धारा 226 द्वारा उच्च न्यायालय को यह अधिकार प्राप्त है और उच्चतम न्यायालय उपरोक्त लेखों के अतिरिक्त अन्य तरह के लेख भी जारी कर सकता है ।

इस प्रकार संविधान की धारा 32 अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। यह उपचारों का प्रावधान करती है जिनके बिना अधिकार निरर्थक हो जाते हैं। संविधान सभा में भाषण देते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा था कि बिना उपचार के वास्तविक अधिकार प्राप्त नहीं होता। इस दृष्टि से धारा 33 भी अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है।

क्या मूल अधिकार स्थगित या सीमित किये जा सकते है ?

यहाँ पर प्रश्न उठता है कि क्या मूल अधिकार, जिनका प्रावधान संविधान में है,स्थगित या सीमित किये जा सकते हैं। ऊपर मूल अधिकारों का विश्लेषण करते हुए हमने कुछ व्यवस्थाओं का वर्णन किया है जिसके कारण मूल अधिकार सीमित किये जा सकते है। वस्तुतः कोई भी अधिकार असीमित नहीं हो सकता इसके कई कारण है। प्रथम तो ये मूल अधिकारों का उपभोग करने का अधिकार का हनन कर सकता है। कोई नागरिक उसका दूरूपयोग कर दूसरे नागरिक के मूल अधिकार का हनन कर सकता है। दूसरे, जो मूल अधिकार सामान्य स्थिति में उचित है, वे ही अधिकार सकंटकाल में अनुचित तथा राष्ट्र के घातक हो सकते है। तीसरे की सुरक्षा पर ही नागरिकों के मूल अधिकारों का उपभोग नहीं कर सकते।अतः जैसा श्री दुर्गादास बसु लिखते है, निरकुश तथा व्यक्तिगत अधिकार किसी भी सभ्य नहीं हो सकता है। यहा पर संक्षेप में हम उन व्यवस्थाओं का विवरण दे रहे है जिनमें संविधान द्वारा प्रदत मूल अधिकारों पर सीमॉए लगाई जा सकती है।

1. संसद को यह अधिकार दिया गया है कि वह सुरक्षा तथा शान्ति रखने वाली शक्तियों से मूल अधिकारों को सीमित कर सकती है ।
2. सार्वजनिक सुरक्षा तथा शान्ति के लिए फौजी कानून के क्षेत्र में मूल अधिकारों का अतिक्रमण किया जा सकता है।
3. राष्ट्रपति द्वारा जब संकटकालीन अवस्था की घोषणा होगी, तो स्वतन्त्रता अधिकार स्वतः स्थगित हो जायेगे।
4. आपात घोषणा लागू होने पर,राष्ट्रपति यह आज्ञा निकाल सकता है कि अमूक मूल अधिकार की प्राप्ति के लिए

कोई व्यक्ति न्यायालय की शरण नहीं ले सकता। इस प्रकार के आदेशों को यथाशीघ्र संसद के समक्ष पेश किया जायेगा और संसद उनमें संशोधन कर सकती है।

5. संविधान में संशोधन करके भी संसद किसी मूल अधिकार को सीमित कर सकती है। हम देखते है कि संसद ने कई धाराओं में इस प्रकार का संशोधन किया है। संसद को मूल अधिकार सम्बन्धी उपबन्धों में संशोधन करने का पूर्ण अधिकार है।

भारतीय संविधान में उल्लेखित मूल अधिकारों के सम्बन्ध में विद्वानों में बहुत तर्क–वितर्क होते रहे है। कुछ विदानों ने मूल अधिकार संबन्धी अनुच्छेद की कटु आलोचना की है और बताया है यदि संविधान एक हाथ से नागरिकों को मूल अधिकार देता है तो अत्यधिक प्रतिबंधों द्वारा उन्हे मर्यादित कर दूसरे हाथ छीन लेता है। यदि एक और सम्पति का अधिकार दिया गया है, तो दूसरी और उससे वंचित करने का अधिकार संसद को दे दिया है। यदि एक और व्यक्ति की पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रावधान है, तो दूसरी ओर देश की सुरक्षा, इन प्रतिबन्धों के कारण नागरिको के मूल अधिकार नगण्य हो गए है। आलोचकों का यह दूसरा तर्क यह है कि संविधान में कई महत्वपूर्ण मूल अधिकरों का उल्लेख नहीं है। रूस के संविधान की तरह यहॉ के संविधान में नागरिकों के कार्य करने का अधिकार, उनके विश्राम करने का अधिकार, तथा रोगावस्था में सहायता –प्राप्ति के अधिकार इत्यादि का उल्लेख नही है।

भारतीय संविधान में मूल अधिकारों पर जो प्रतिबन्ध लगाये गए है उनसे स्पष्ट है कि न्यायिक पुर्नाअवलोकन की प्रणाली अपनाते हुए संविधान के निर्माताओं ने संसद की सर्वोच्चता स्वीकार की है तथा संसद एवं न्यायपालिका के अधिकारों के बीच संतुलन स्थापित किया है। निःसंदेह कुछ प्रतिबन्ध मूल अधिकारों पर आघात करते है, यघपि यह कटु है, लेकिन संविधान में उनका होना बुरा नहीं है।

संदर्भ सूची

1. भारत का संविधान, राजसभा खण्ड, विद्यार्थी विभाग, विधि न्याय एवं कम्पनी कार्य मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ संख्या –1
2. सुभाष चन्द्र कश्यप, हयूमन राइटस एण्ड पार्लियामेंट–1962
3. नेहरू – गिलिम्पसेस ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री, पृष्ठ संख्या–32
4. डॉ. ए. पी. अवस्थी, भारतीय शासन एवं राजनीति, पृष्ठ संख्या .163
5. डॉ. ए. पी. अवस्थी, भारतीय शासन एवं राजनीति, पृष्ठ संख्या .164
6. डॉ. ए. पी अवस्थी, भारतीय शासन एवं राजनीति, पृष्ठ संख्या .168
7. डॉ. ए. पी अवस्थी, भारतीय शासन एवं राजनीति, पृष्ठ संख्या.169